Vol.3, No. 2 (July 2014) P. 43-48 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

पखावज में प्रगतिशीलता के पक्षधर स्वामी पागलदास

डॉ0 सीमा जौहरी
असिस्टेंट प्रोफेसर, (संविदा) संगीत विभाग
कुरूश्रेत्र विश्वविद्यालय, कुरूश्रेत्र
Email: seemajohri2@gmail.com

15 अगस्त 1920 को उ0प्र0 के देवरिया जनपद के ग्राम मझौली में स्वामी जी का जन्म हुआ। जय मृदंग का घोष करने वाले स्वामी पागलदास मात्र नौ महीने की स्कूली शिक्षा के बावजूद सुयोग्य शिक्षक, परीक्षक, वादक, विजिटिंग फैलो तथा व्याख्याता के साथ साथ अनुभवी लेखक भी थे। आपकी पुस्तके मृदंग तबला प्रभाकर दो भागों में तथा तबला कौमुदी तीन भागों में प्रकाशित हो चुकी है तथा विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में मृदंग अंक सहित कई शोध–परक लेख प्रकाशित हुए हैं।

पखावज को 21 वीं शताब्दी का लोकप्रिय वाद्य बनाने हेतु वह प्राणपण से जुटे थे उनका कहना था–कि यह पखावज कलाकार कार्यक्रम कर लें जनता का मनोरंजन कर लें, पैसा कमा लें लेकिन पखावज का विकास या तो मेरे द्वारा होगा या मेरे शिष्यों द्वारा क्योंकि मात्र पखावज बजा लेने से ही पखावज का भला नहीं होने वाला है। पखावज के विकास के लिए जिस सोंच की आवश्यकता है जिस रचनात्मक ऊर्जा की आवश्यकता होती है वह मेरे पास है और मैं उसे बिना किसी कृपणता के अपने शिष्यों को दे रहा हूँ।

उनका स्पष्ट मानना था कि घराने संतानों से नहीं शिष्यों से चलते हैं। क्योंकि पुत्र, पिता का धन अनायास ही प्राप्त कर सकता है, किन्तु विद्या के लिए, उसे पिता का शिष्यत्व ग्रहण करना आवश्यक है। वस्तुतः पखावज सीखने की प्रेरणा आपको अलाउद्दीन खां साहेब से ही मिली क्योंकि खां साहेब को चिन्ता थी कहीं पखावज लुप्त न हो जाय। परम्परा से यह ब्राह्मम्णों की विद्या थी और धीरे–धीरे लोग इसे भूल रहे थे। स्वामी पागलदास जी ने पखावज को विस्मृत होने से बचाया और उसे नयी गरिमा दी। पखावज को संगीत में उसका वास्तविक महत्व व स्थान दिलाना स्वामी जी का लक्ष्य रहा है। उत्तरी भारत में पखावज और स्वामी पागलदास एक दूसरे के पर्याय हैं, उन्होंने अब तक हजारों परनों की रचना की है। पखावज के एकलवादन को भी उन्होंने लोकप्रिय बनाया, कर्नाटक संगीत के वाद्यों के साथ युगलबन्दी की तथा पखावज के साथ संगत के द्वार भी खोले।[1]

ऐसा व्यक्ति जिसे परम्परागत स्कूली शिक्षा मात्र 9 माह ही मिल सकी किन्तु उसके द्वारा संगीत के हर पक्ष पर गम्भीरतापूर्वक मनन, चिन्तन व समाधान परक दृष्टि से विवेचन करना आश्चर्यजनक कहा जा सकता है। आज देश भर में (तबले व पखावज के) घरानों पर बहस छिड़ी हुई है। स्वामी पागलदास जी भी इस बहस में उन्मुक्तता से भागीदार रहे।[2] किन्तु उनका मानना था कि घरानों की चर्चायें तो मात्र संकेतक है वस्तुतः हम सबका कोई घराना है तो वह भारतीय वाद्य संगीत है। आज आवश्यकता है इसके आधार स्तम्भों ताल–लय, स्वर, रचनायें, साधना, उच्चारण, अनुभव तथा प्रत्युत्पन्न प्रतिभा में सामंजस्य स्थापित हो। उपरोक्त तत्वों की निकटता की ओर हम सब बढ़ते रहे तो घराने सम्बंधी विवादों में पड़ने की न ही आवश्यकता रह जाती है और न समय ही बच पाता है।[3]

इसी प्रकार ताल वाद्यों की पारिभाषिक शब्दावलियों में जो मत भिन्नतायें देखने को मिलती है उस पर उनकी बानी व लेखनी चलती रही है। चाहे वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं नाट्य संकाय द्वारा आयोजित उत्तर भारतीय संगीत की पारिभाषिक शब्दावली पर अखिल भारतीय परिसंवाद (दिनांक 15 से 18 नवम्बर) में श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, श्रीमती योगमाया शुक्ल व स्वामी पागलदास जी के मध्य हुई मीठी नोंक झोंक (तकरार) हो[4] अथवा पत्रिकाओं में छपे लेख हों, उनके अनुसार मृदंग व तबला के पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता स्थापित होनी चाहिए। "क्योंकि घरानों की सरिताओं का विलय ताल समुद्र में द्रुत गति से होता जा रहा है"। आज नौकरी हेतु संगीत की समस्त विधाओं के विद्यार्थी डिग्री लेने को आतुर हैं अतः आवश्यकता है कि डिग्री प्रदान करने वाली संस्थायें (उनका इशारा संगीत की शैक्षणिक संस्थाओं की ओर है) इस क्षेत्र के विशेषज्ञों को एक मंच पर एकत्र कर विभिन्न रचनाओं यथा फरमाइशी चक्करदार, कमाली परन, नवहक्का व आदेशी ताल परन, कायदे के विस्तार से सम्बद्ध शब्दावली पल्टा, दोहरा, बांट, पेंच, बल, प्रकार आदि तथा गतों तोड़ों, परनों को आवश्यक संशोधन और परिष्करण के पश्चात् परिभाषित करें जो सभी संस्थानों को मान्य हो। इस हेतु उन्होंने गुणियों का आह्वान किया है जिससे भावी पीढ़ी का कल्याण हो सके। शब्दावलियों में मतैक्य स्थापित होना ही चाहिए। यह युग की मांग है। एक स्थापित कलाकार का संगीत शिक्षाविद् होना दुर्लभ होता है। अपने आप को कलाकार व शिक्षक के आरोपण से शिथिल करते हुए संगीत शिक्षाविद् के रूप में उनकी सोंच घरानेदार कलाकार व शिक्षण संस्थाओं के शिक्षकों दोनों पर ही कुठाराघात करती है। जहां एक ओर घरानेदार कलाकारों की प्रशंसा करते नहीं थकते किंतु मृदंग व तबला के पारिभाषिक शब्दो में आयी विकृति का दोष पूर्वाचार्यों की अनपढ़ता को देते हैं। साथ ही संस्थागत संगीत शिक्षकों को 'झोलाछाप' शब्द से नवाजकर कहते हैं कि–"यदि उनसे पूछा जाय कि अपने शिक्षक जीवन में आपने कितने कलाकार दिए तो उत्तर में वे शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं दिखेंगे।[5] यहां उनका मकसद किसी को अपमानित करने का नहीं है वह चाहते थे कि घरानेदार कलाकारों व संस्थागत संगीत शिक्षकों के मध्य जो खाई खुदी है उसे पाटा जा सके, सामंजस्य स्थापित हो सके जिससे संगीत का भला हो सके। संगीत सम्बंधी किसी सरकारी अथवा निजी संस्था के उद्घाटन अवसर पर बुलाये जाने पर वह अवश्य जाते। उनकी विद्वता से परिचित आयोजकगण, साक्षात्कारकर्ता, संगीत जिज्ञासु, संगीत शिक्षक आदि उन्हें कला प्रदर्शन हेतु ही न बुलाते थे अपितु संगीत सम्बंधी जटिल समस्याओं (विशेष रूप से पखावज व तबले के सन्दर्भ में) के समाधान हेतु गोष्ठियों, चर्चाओं व साक्षात्कार हेतु आमंत्रित करते थे। ऐसे ही एक साक्षात्कार में विजय शंकर मिश्र सरीखे साक्षात्कारकर्ता के पैने प्रश्नों के समाधान उनसे भी पैने है।[6] विजय शंकर मिश्र जी का प्रश्न–''आपने कहा कि पखावज से सितार जैसे तंत्र वाद्य और ख्याल तथा गजल जैसी गायकी की संगति की जा सकती है। अगर ऐसा है तो क्यों नहीं पखावज से ही इनकी संगति की गई? क्यों तबला को आगे आना पड़ा?

स्वामी जी का उत्तर–''इसका श्रेय पखावज वादकों की हठधर्मिता को दिया जाना चाहिए अपने आविष्कार काल में ख्याल, ठुमरी, सितार, तबला आदि को क्षुद्र कला के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विद्वानों की सभा में ध्रुपद, धमार, वीणा और पखावज वादन का प्रयोग होता था। उस काल में पखावज वादकों ने समय के अनुरूप स्वयं को ढालना आवश्यक नहीं समझा। वे कहते थे हाथी की सवारी करने के बाद अब गधे की सवारी करें ? जैसे–जैसे वीणा वादन का ध्रुपद और धमार गायन का प्रचलन कम होता गया पखावज भी पिछड़ता गया लेकिन अब पुनः लोगों की चेतना जागृत हुई हैं। लोग पखावज की ओर आकर्षित हो रहे हैं। देश विदेश के अनेंक लोग इसे

सीख रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अगर संगीत अकादमियों राज्य और केन्द्र सरकार, कलाकारों और संगीत रसिकों का अपेक्षित सहयोग मिले तो पखावज का स्वर्णिम युग एक बार पुनः लौटेगा।''

प्रश्न–जनमानस में पखावज की जो छवि है वह एक जोरदार और गंभीर वाद्य के रूप में है। अतः सितार या ख्याल की संगति करते समय इस छवि के नष्ट होने का खतरा रहेगा? क्या इस पहलू पर आपने सोंचा है?

संगीतशिक्षाविद् स्वामी जी का उत्तर–नष्ट हो जाने दीजिए इस कपोल कल्पित छद्म छवि को। कृष्ण के महारास के साथ आपका तबला नहीं मेरा पखावज बजा था और वह मधुर ही था। मानस में गोस्वामी जी ने पखावज पर इस प्रकार प्रकाश डाला है मधुर–मधुर गरजत घनघोरा, वृष्टि होत जन उपल कठोरा। कहने का आशय है कि पखावज में मेघ की गर्जना भी संभव है और वर्षा की बौछार भी। पखावज तो मात्र एक वाद्य है असल चीज है उसे बजाने की कला। वादन की दृष्टि जितनी विकसित होगी उतना ही विकसित होगा इसका क्षेत्र भी।

अपने उपरोक्त विचार के पीछे अनुभवजन्य तर्क भी वह देते हैं। उनका कहना है "पखावज में अनन्त संभावनायें हैं अभी तक इसका सीमित रूप ही सामने आ पाया है मैं सितार वादन और गजल गायन के साथ भी कुशलतापूर्वक पखावज वादन करने की क्षमता रखता हूं। जबकि इस ओर सोचा ही नहीं जा रहा है दक्षिण शैली के गायन और नृत्य के साथ संगति कर चुका हूं मै।

वर्तमान में पखावज व तबले के विषय में अनेंक भ्रामक मान्यतायें संगीत समाज में व्याप्त हैं इस कुहासे को छांटते हुए स्वामी जी कहते हैं कि तबला शत प्रतिशत पखावज से प्रभावित है। इसके पास जो कुछ भी है पखावज का ही है, लेकिन अब इसने अपने सतत् प्रयास से उसे अपना बना लिया है और इस हद तक अपना बनाया है कि उसे वापस छीना नहीं जा सकता। तबले के सभी मूलभूत बोल धा, ता, ग, घ, ते, टे आदि मूलतः पखावज के ही हैं जो अब तबले के बोल के रूप में जाने जाते हैं। लेकिन अब इस लड़ाई में कोई दम नहीं है। मैं तबला और पखावज दोनों ही वाद्यों से जुड़ा रहा हूं। दोनो के कार्यक्रम दिये हैं, दोनों की ही शिक्षा देता हूं और दोनों ही विषयों पर किताबे लिखी हैं। मैं तबला और पखावज को तालवाद्य के दो धड़ों के रूप में स्वीकरते हुए दोनों ही वर्गों के कलाकारों से अपेक्षा करता हूं कि दोनों एक दूसरे के सहयोग और विकास के लिए कार्य करें। श्री विजय शंकर मिश्र जी का एक अन्य प्रश्न–''आपने नटराज शंकर से प्रभावित होकर 5½ मात्रा की त्रिलोचन ताल की रचना की है। इसमें ताल की सबसे छोटी इकाई मात्रा को भी आपने खंडित कर दिया। शास्त्रीय दृष्टि से आप इसे कितना सही मानते हैं''?

स्वामी जी का समाधानापरक उत्तर–''मात्रा की कोई अवधि तो निश्चित है नहीं। इसलिए विलम्बित मध्यलय में तो कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन द्रुत लय में इन तालों का सही प्रयोग संभव नहीं है यह मैं मानता हूं। वैसे भी इन तालों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही होता है।[7]

अपने दिल्ली भ्रमण में स्वामी पागलदास जी ने ध्रुपद व मृदंग के ह्रास के सूक्ष्म कारणों का विवेचन किया जो विभिन्न समाचार पत्रों में प्रमुखता से छपा सारांश निम्नवत् है–

"पखावज सम्राट पागलदास ने ध्रुपद शैली की उपेक्षा पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि यदि इसके लिए अभी कुछ नहीं किया गया तो यह इतिहास की वस्तु बनकर रह जायेगी[8]। विभिन्न संगीत समारोहों और आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर भी ध्रुपद शैली की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती या इसका प्रतिनिधित्व गौण रहता है। इधर कुछ वर्षों से ध्रुपद मेला तथा समारोहों का आयोजन होने लगा है। पर आयोजको की अदूरदर्शिता से यह विधाएं जनमानस तक नहीं पहुंच पा रही है। आजकल के अधिकतर आयोजनों में स्वर पक्ष के आगे ताल लय पक्ष को कम महत्व दिया जाता है। पूर्वाचार्यों के अनुसार गायन, वादन तत्पश्चात् नृत्य इस वरीयता क्रम में विपरीतता के परिणामस्वरूप 59.9% आयोजन नृत्य कार्यक्रमों के होते हैं तथा गायन व वादन गौण हो गया है।[9] पागलदास जी समाचार पत्रों व पत्रिकाओं की आलोचना करते हुए कहते हैं–"इनमें भी कला संस्कृति के पृष्ठ नृत्य और नर्तक, नर्तकियों की चर्चा से भरे होते हैं। इनमें वाद्यों और खासकर ताल वाद्यों की घोर उपेक्षा की जाती है।" उनका कहना था कि–'सभी कलात्मक विधाओं में स्पर्धा का विशेष महत्व है और जिन शैलियों में स्पर्धा है। उनका उत्तरोत्तर विकास हो रहा है जबकि स्पर्धा के अभाव वाली शैलियों का ह्रास हो रहा है।[10]

पखावज वादकों को समय के साथ चलते हुए जन सामान्य की रूचि का ध्यान रखते हुए उपयुक्त परिवर्तन करने की सलाह देते हुए कहते हैं–

The matter of fact is that the fast life of today does not permit time to understand and appreciate the complexities of Indian classical music. It therefore, becomes the duty of the artist to introduce modification in classical music to suit the interest of the common man. They should bring in such changes in their style so as to charm everybody[11].

एक समाचार पत्र में प्रकाशित लेख में पखावज के सन्दर्भ में व्याप्त भ्रामक मान्यताओं को दूर करने की चेष्टा के तहत आपका कहना है कि पखवाज में 'चाट' और 'थाप' का प्रयोग समान रूप से हो सकता है, मगर इसके लिए वादकों से भी प्रतिभा तथा अभ्यास की अपेक्षा की जाती है मात्र गंभीर वाद्य मानकर युद्ध जैसा वातावरण प्रस्तुत करना ही पखावज वादन नहीं है। इसके लिए सबसे पहले रूढ़िग्रस्तता छोड़नी होगी। अन्य वाद्यों की तरह अगर पखावज को भी प्रयोग के तौर पर प्रतिष्ठित किया जाय तो अच्छी संभावनाएं सामने आयेंगी। सरोद–सितार जैसे तंत्र वाद्यों की संगत में पखावज को अधिकाधिक स्थान मिलना चाहिए।[12]

ताल वाद्यों की प्रमुख शब्दावलियों की भ्रान्तियों को दूर करने हेतु वह सदैव तत्पर रहते थे। अप्रचलित तालों के ठेकों को लेकर भ्रम की स्थिति रहती है इस संदर्भ में उनका कहना है–ठेका के लिए प्रचलित ताल तो निर्विवाद हैं। किन्तु अप्रचलित तालों, जैसे–सवारी, गजझंपा, शिखर, विष्णु, ब्रह्म, रूद्र, मत, बसंत, चंद्रचौताल, चंद्रक्रीड़ा, दोबहार, मणि आदि तालों को एकरूपता दी जानी चाहिए अथवा गिनती को प्रधान मान कर जो परीक्षार्थी प्रस्तुत करें, उसी को स्वीकार किया जाना चाहिए। क्योंकि कुछ स्थानों पर ऐसा पाया गया है कि छात्रों द्वारा प्रस्तुत अप्रचलित तालों के ठेके परीक्षक, स्वीकार नहीं करते इसलिए परीक्षकों को भी आचारसंहिता मिलनी चाहिए जिससे वे अपने अधिकार का दुरूपयोग न कर सके। क्योंकि कहीं–कहीं परीक्षक

बजाय सुनने–समझने के अपना प्रदर्शन प्रारम्भ कर देते हैं और परीक्षार्थियों को अनावश्यक रूप से 'नरवस' कर देते हैं।

अंत में मैं यह कहना चाहूंगा कि कला की नैसर्गिकता और उसकी पवित्रता को अर्थ और अधिकार के द्वारा नष्ट नहीं किया जाना चाहिए।[13]

अमूमन लोग तीन ताल को तबले की ताल मानते है इस पर उनका कहना था–तीनताल हमारा बहुत प्राचीन ताल है इसे हम आदिताल या अन्य किसी नाम से भले ही जानते हों। मृदंग की शिक्षा में सर्वप्रथम हमें गुरुजनों ने जो दिया वह चौमुखी प्रस्तार था जिसके मूल वर्ण हैं ता, धित, थुं और ना। फिर क्रमशः इन अक्षरों में अन्य अक्षरों को जोड़कर इनके विस्तार किये गये तो यह जिसे हम तीनताल कहते हैं वह पखावज का प्राचीन ताल है जिसकी हजारों रचनाएं हमारी परम्परा में सुरक्षित हैं। हमारे गुरुदेव द्वारा निर्मित अवधी घराना मृदंग और तबला दोनों के लिए समान विचार रखता है और समय की भी यही मांग है। पखावज पर तीनताल प्रस्तुत करने पर जो विचार बनता है, वह वर्तमान रूढ़ि का अंग है। क्योंकि आजकल पखावज चौताल प्रधान और तबला तीनताल प्रधान हो गया है।[14]

पखावज वादन में बोल परनों का विशेष महत्व है। इनकी विषय–वस्तु मुख्यतः पौराणिक देवी–देवताओं की स्तुति, उनकी महिमा का गान, प्रकृति चित्रण इत्यादि है। आधुनिक काल में भी इनकी विषयवस्तु में परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते। किन्तु पखावज में प्रगतिशीलता के पक्षधर स्वामी जी ने सम–सामयिक प्रवृत्तियों को इसका अंग बनाया। उन्होंने प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी की साहसिकता, दृढ़ इच्छाशक्ति, अप्राकृतिक मृत्यु व उनके प्रति अपनी श्रद्धा को अपनी रचनाओं में स्थान दिया–

प्रियदर्शनी परन–(इन्दिरा ताल)

धन धन दीनन विदारनि, दुर्गादानव
दलसंहारनि, कृधान किटतक, तिरकिट,
धाकिट तकधुम किटतक गदिगन धा
प्रिय दर्शनी जय जयति जननि जय जय,

इन्दिरा परन–

दिगन दिगन दिग दिगन्त कीरति
गति निशंक मति सुदृढ़ धाकिटधा,
जगमगात जग, जीयत धवल यश,
गगन मगन दुःख हृदय विदरत,
जनगन क्रदन करे, धीर नहि धरे,
कियो विश्वासघात, पविपात सरिस,
हो, अमर रहे यश राष्ट्र जननि
जय जयति इन्दिरा गांधी की जै
जै जै जै जै जै[15]

वस्तुतः स्वामी जी से निःसृत भाव तरंगें व साधना से अभिपूरित कलाभिव्यक्ति संगीत से अनभिज्ञ श्रोता को भी तरंगित कर अपनी ओर खींच लेती, फिर संगीत रसिकों का तो कहना ही क्या ? इतनी शक्ति थी उनके सम्प्रेषण में जो उपस्थित जन को बांध देती थी। बाबा जी की बोल

पढ़न्त बहुत अच्छी थी। लयकारी के गणित के हिसाब, बोलों की स्पष्टता, चमत्कार प्रदर्शन हेतु बाबा जी आड़े टेढ़े ताल भी बजाते थे। $9\frac{1}{2}$ $7\frac{1}{2}$ $5\frac{1}{2}$ मात्रा की तालें स्वामी जी बजाते थे तत्कालीन पखावजियों में इनका अभाव था। पागलदास जी की बोल परनें तो नायाब थीं हीं क्योंकि उनका भाषा पर जैसा अधिकार था वैसा अन्यत्र दुर्लभ था। प्रस्तुतिकरण को प्रभावी बनाना, वाणी का ओज, ब्रह्मचर्य का तेज, अध्ययन की गहराई, भ्रमण का अनुभव, पखावज के उन्नयन की तड़प, लय–ताल गत जटिल प्रश्नों के समाधान की चिन्ता, शास्त्र लेखन, भव्यायोजनों की व्यवस्था, शिष्यों को तैयार करने व विभिन्न मंचों से उन्हें कार्यक्रमों में शिरकत करवाने की ललक इत्यादि। यही विशिष्टतायें उनको समकालीन पखावज वादकों में पृथक पहचान, अस्तित्व व गौरव प्रदान करती हैं।[16]

सन्दर्भ

1. अमृत प्रभात 3–5–1981 लेखक–श्री जोखू प्रसाद तिवारी।
2. जौहरी डा0 सीमा–''पं0 राम शंकर दास स्वामी पागल दास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व; एक अध्ययन'' पृ. 48
3. स्वतंत्र भारत–26.12.80 लेखक–स्वामी पागल दास।
4. दैनिक जागरण (7 दिसम्बर) लेख शीर्षक–हिस्दुस्तानी संगीत पारिभाषिक शब्दावली।
5. संगीत अंक अँक्टूबर 1985 लेख शीर्षक–तालवाद्यों की पारिभाषिक शब्दावली–स्वामी पागल दास।
6. लेखिका
7. जनसत्ता–10 मार्च 1993
8. जागरण–01.04.1985
9. नवभारत टाइम्स–31.03.1985
10. जनमोर्चा–10 अप्रैल 1985
11. एन0आई0पी0 06.12.1985 ''Change Needs in Classical Style''
12. आज (समाचार पत्र) 11 जून 1982 प्रस्तुति विकल्प शर्मा
13. संगीत (विशेषांक) संगीत के पाठ्यक्रम जनवरी–फरवरी 1987
14. दास श्री अजय–विजय जी से ज्ञात
15. समाचार–पत्र में प्रकाशित (विजय दास जी से साभार प्राप्त)
16. जौहरी डा0 सीमा–पं0 राम शंकर दास स्वामी पागल दास जी पृ0 72